अनुभव

परम्परा से आधुनिकता तक : एक सफर 'स्कूल से बाहर'

❑ संजीव राय और राजेश पटनायक

भाषा की मौखिक परम्परा की तरह व्यावहारिक गणित की अपनी ही प्राचीन परम्परा है। दूर-दूर तक की यात्राएं करने वाले व्यापारियों से घूमन्तू बंजारों तक ऐसे अनेक समुदाय हैं, जो वाणिज्यिक गतिविधियों से आजीविका कमाते थे और बिना स्कूल गये सामान्य गणितीय संक्रियाओं का प्रयोग करते थे। यहां प्रस्तुत प्रसंगों की भांति गणित की व्यावहारिक संक्रियाएं एक-दूसरे से या अपनी पुरानी पीढ़ियों से सीखी जाती रही हैं । यह अलग बात है कि एक चरवाहे अथवा एक ट्रक ड्राइवर की रोजमर्रा की यह दक्षता आधी-अधूरी गणित साक्षरता से आगे की चीज नहीं है।

परम्परागत ज्ञान को स्कूली व्यवस्था में स्थान दिलाने की कोशिशें जारी है और स्थानीय पाठ्यक्रम और स्थानीय पद्धति की एक अपनी जरूरत है, जिसके न होने से जीवन और शिक्षा का परस्पर साम्य बहुतों के लिए नहीं हो पाता है। पहले से चली आ रही केन्द्रीयता और स्थानीयता की यह बहस विशेष समुदाय या किसी विशेष आयु वर्ग के पास सीखने और सिखाने की 'अपनी' पद्धति तो होती ही है, अनुभव और मौखिक परम्परा से अर्जित ज्ञान भी होता है। लेकिन औपचारिक शिक्षा व्यवस्था उनके ज्ञान और पद्धति दोनों को ही अपनी चाहरदीवारी में जगह नहीं देती है।

विभिन्न जीवन शैली वाले लोगों को जब व्यवस्था/सिस्टम के भीतर जगह नहीं मिलती (पाठ्यपुस्तक, पद्धति सभी जगह) तो उन्हें अपनी घुमन्तू और आदिवासी जीवनचर्या में लौटना श्रेयस्कर लगता है।

इस पर्चे में सीखने की (औपचारिक पद्धति से अलग) कुछ ऐसी पद्धतियों का प्रस्तुतिकरण है जो तकनीकी का उत्कृष्ट उपयोग तो बताती हैं, स्कूल के बाहर रहकर भी जीवनोपयोगी शिक्षा कितनी सरलता से हासिल की जा सकती है इसका विवरण भी देती है।

पहली मिसाल : प्रेमसिंह

प्रेमसिंह, भेड़ बकरी चराने वाले रेबारी जाति के हैं । वे कच्छ जिले के लाखापार ग्राम से संबंधित हैं। कच्छ के रेबारी अपनी भेड़ बकरी लेकर दक्षिण गुजरात, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्धप्रदेश तक घास की तलाश में जाते रहते हैं । कच्छ में पानी की कमी और अकाल ने उन्हें इस बात के लिए बाध्य किया कि वे सिर्फ पूरे वर्ष में चार माह के लिए (जून-सितम्बर) अपने गांव वापस आते हैं । लेकिन जंगल के अधिकारियों द्वारा शोषित होने और बदलते वक्त के साथ तालमेल बैठाने की जद्दोजहद में शिक्षा का महत्व रेबारी समुदाय को पता चला। भेड़ों के पीछे-पीछे चलते जाना जिनका जीवन हो, पूरे परिवार की जरूरत का सामान एक ऊँट पर लदा हो और कहीं भी डेरा जमा कर रात बिताई और सुबह नये ठिकाने पर जाना हो, तो उनका स्कूल में जाना और बने रहना कैसे संभव है ?

प्रेमसिंह बचपन से ही भेड़ बकरी के काम में परिवार के साथ थे। अपनी उम्र के दूसरों बच्चों को पढ़ते देख, उनका भी मन स्कूल जाने का होता था परन्तु पूरे वर्ष अलग-अलग जगह जाने की बाध्यता ने उन्हें स्कूल से बाहर रखा। पढ़ने की चाहत ने प्रेमसिंह को एक नया रास्ता दिया । गणित और भाषा सीखने का रास्ता।

गणितीय समझ, रेबारी समुदाय की अपनी विशिष्टता है। जहां डेरा लगता है, वहां बड़े-बुजुर्ग बच्चों को व्यावहारिक जीवन में काम आने वाले हिसाब सिखाते हैं । पहले वे रुपये में 16 आने से शुरू करते थे, परन्तु अब रुपये में 4 आने का तरीका अपनाते हैं। भेड़ों के 5-5 और 10-10 के झुंड बनाकर सौ और हजार तक की अवधारणा सिखाते हैं । 20-20 और 50-50 का आटा-दाल खरीदना इस समझ को जीवन में उतारने का मौका देता है। बच्चों को सामान खरीदने के लिए पैसा देना एक ऐसी प्रक्रिया है जहां अगली पीढ़ी स्वयं हिसाब सीख जाती है ।

ये गणितीय समझ तो प्रेमसिंह को थी, परन्तु मौखिक को लिखना और लिखे हुए को पढ़ना एक चुनौती थी । भेड़ों का झुंड किसी स्कूल के पास से गुजरता तो प्रेमसिंह किसी शिक्षक से अक्षरों और अंकों को लिखवा लेते और फिर जब भेड़ें घास चरतीं तो प्रेम सिंह जमीन पर उंगलियों से अक्षर लिखता । धीरे-धीरे उसे अक्षरों और अंकों की पहचान हो गई । प्रेम सिंह कहते हैं - ''अक्षरों की पहचान के बाद में पुराने कागज/अखबार के किसी वाक्य को दिखाकर पूछता था कि ये क्या लिखा है ? वाक्य को याद करते हुए मात्रा का प्रयोग सीखा। धीरे-धीरे मात्रा के साथ अक्षर को पढ़ने का ढंग आ गया।'' गुजराती सीखने के बाद भी प्रेमसिंह की मुश्किलें आसान नहीं हुईं । मध्यप्रदेश में वन विभाग के अधिकारियों के खिलाफ शिकायत दर्ज करने की जरूरत ने उन्हें हिन्दी सीखने

को प्रेरित किया और स्थानीय अध्यापकों की मदद से प्रेमसिंह उसी पद्धति से हिन्दी पढ़ना-लिखना सीख गए । प्रेमसिंह अंग्रेजी की वर्णमाला भी सीख गये, लेकिन वे इसमें ज्यादा आगे नहीं बढ़ सके। वे ध्वनि के आधार पर शब्द और अंक लिख सकते हैं, लेकिन अंग्रेजी शब्द का अर्थ उन्हें नहीं मालूम ।

38 वर्ष के प्रेमसिंह अब भेड़ बकरी नहीं चराते हैं । वे कान में गहने, धोती-पगड़ी भी नहीं पहनते हैं । उनके पास खुद का ट्रक है, पैण्ट-शर्ट पहनते हैं और मोबाइल ले कर चलते हैं । 12 वर्ष पहले उन्होंने भेड़ का काम छोड़ दिया और अब वे देश के अलग

अलग हिस्सों में ट्रक लेकर जाते हैं । उनके पास ड्राइविंग लाइसेन्स तो है ही, वे गुजराती-हिन्दी लिख-पढ़ भी सकते हैं, बैंक खाता खुद संभालते हैं और हिसाब एक दम खरा करते हैं ।

दूसरी मिसाल : भुजा भाई रेबारी

भुजा भाई रेबारी ने भी 20 वर्षों तक भेड़ों के साथ घूमने के बाद अब उनसे तौबा कर ली है । भुजा भाई ना तो कभी स्कूल गए और ना ही कभी अपने बड़े भाई प्रेमसिंह की तरह जमीन पर लिखकर सीखने की जहमत मोल ली। लिखने के नाम पर वे अपना नाम लिख सकते हैं और वे साफ कहते हैं ''हूं अभढ़ हूं।'' (मैं अनपढ़ हूं)। लेकिन भुजा भाई ट्रक के मालिक हैं, बैंक का ऋण, मकान में खर्चा, ट्रक का भाड़ा, सभी कुछ आसानी से जोड़ घटा लेते हैं।

भेड़ों के साथ शहर-गांव जाते उन्होंने कैलकूलेटर देखा और दुकान का हिसाब लोगों को उसी से करते देखा। अनौपचारिक रूप से वे कैलकूलेटर के गुणों की पड़ताल करते रहे। एक बार भुजा भाई ने पचास रुपये दांव पर लगाकर केलकूलेटर खरीद लिया और 5-6 दिन अंक और चिन्ह की जानकारी लेते रहे । धीरे-धीरे एक से नौ तक के अंकों की समझ हो गई और नए अंकों के लिए जोड़-घटाना, गुणा-भाग का काम भी आसान हो गया।

भुजा भाई अब अपने साथ हमेशा छोटा कैलकूलेटर रखते हैं और उसी पर निर्भर करते हैं। आज उनकी लड़की 11 वीं में पढ़ती है । वे व्यवस्थित जीवन जीते हैं । भुजाभाई ने सीखने का आसान और अनूठा तरीका निकाल लिया है, 50 रुपये का कैलकूलेटर। और पांच दिन खर्च करके गणित सीखने का यह तरीका क्या नई शुरूआत मानी जा सकती है? क्या साक्षरों की जमात में इनकी गिनती होगी ? इसका जवाब अभी बाकी है ? ◆